जीव अधिकार, इसका मंगलाचरण। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे, दिगम्बर सन्त वनवासी; (वे) इसकी टीका करते हुए मंगलाचरण करते हैं। अपने चौथा श्लोक चला है। फिर से लेते हैं।

अपवर्गाय भव्यानां शुद्धये स्वात्मनः पुनः।
वक्ष्ये नियमसारस्य वृत्तिं तात्पर्य्यसञ्ज्ञिकाम्।।४।।

यह टीका **भव्यों के मोक्ष के लिए...** देखो! यहाँ कहते हैं, चार गति मिले या (संयोग मिले) ऐसा नहीं। जिससे आत्मा की पूर्ण पवित्रदशा प्राप्त हो, उसके लिये यहाँ टीका की है।

पहले आना चाहिए न, पहले। व्याख्यान से पहले आना चाहिए, तो सामने बैठा जाए, नहीं तो नहीं बैठना। बाद में आवे तो गड़बड़ होती है। यह टीका भव्यों के मोक्ष के लिये है।

मुमुक्षु : अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् आत्मा की पूर्ण पवित्रता प्रगट हो, उसके लिये है। स्वर्ग

मिले या चक्रवर्ती पद मिले, उसके लिये यह टीका नहीं है, ऐसा कहते हैं। चार गति मिले, उसके लिये यह टीका नहीं है। गति का अभाव होकर पंचम गति-मोक्ष मिले, यह ऐसी बाते हैं।

भव्यों के मोक्ष के लिए तथा निज आत्मा की शुद्धि के हेतु... स्वयं विकल्प है, इसलिए ऐसा कहा (कि) भव्यों के मोक्ष के लिये। बाकी यह टीका करते हुए मेरा लक्ष्य आत्मा के ऊपर है; इसलिए मेरी आत्मा की शुद्धि में इस टीका के समय मेरी शुद्धि में वृद्धि होओ, इसके लिये यह टीका करता हूँ। यह टीका है तो विकल्प है, परन्तु विकल्प के काल में मेरा घोलन अन्तर्मुख अखण्ड आनन्दमूर्ति प्रभु के ऊपर झुका है; उसकी शुद्धि वृद्धि होओ। इसके लिये यह टीका करता हूँ।

नियमसार की 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका... वैसे तो प्रवचनसार की जयसेनाचार्य की टीका का नाम भी 'तात्पर्यवृत्ति' है। 'तात्पर्यवृत्ति' अर्थात् टीका का तात्पर्य क्या है, यह कहने में आयेगा। **टीका मैं कहूँगा।** भाषा मैं कहूँगा - ऐसा है न?

मुमुक्षु : उत्तरप्रदेश से आया हूँ। थोड़ा हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने लोग आये हैं?

मुमुक्षु : छह लोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह लोग। अच्छा। कल मेरठवाले थे। बाद में चले गये। हिन्दी है? हिन्दी। अपना हिन्दी है? लाओ।

यह नियमसार नाम का शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में हुए। उन्होंने बनाया है। इसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि थे तो इसकी टीका करते हैं। इसका मंगलाचरण कल से शुरु किया। कहते हैं, यह टीका मोक्ष के लिये बनाता हूँ। आत्मा की शुद्धि किस प्रकार प्रगट हो? चार गति का नाश हो और अपना नित स्वरूप जो शुद्धस्वभाव है, उस शुद्धता की पूर्ण प्राप्ति के लिये यह टीका बनाता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और **निज आत्मा की शुद्धि के हेतु...** मेरी आत्मा की शुद्धि, इस टीका बनाने के काल में मेरा शुद्धस्वरूप, आनन्दस्वरूप का घोलन चलता ही है। मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित हूँ; शरीर, कर्म से भी मैं रहित हूँ - ऐसी

मेरी दृष्टि अन्तर में चलती है; उसकी विशेष शुद्धि होओ। टीका के काल में विशेष शुद्धि हो, ऐसी टीकाकार की प्रार्थना / भावना है। अब सुनो, पाँचवाँ श्लोक।

गुणधरगणधररचितं श्रुतधरसन्तानतस्तु सुव्यक्तम्।
परमागमार्थ-सार्थं वक्तु-ममुं के वयं मन्दाः।।५।।

अहो! मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, आत्म-आनन्द में मस्त हैं, आत्मा के आनन्द में मस्त हैं, उन्हें मुनि कहते हैं। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं, ऐसे टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, इस शास्त्र की टीका करता हूँ। मैं मन्दबुद्धि क्या टीका करूँ? - ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थ :- गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित... गणधरों ने टीका की है। देखो! प्रमाण देते हैं। पण्डितजी! कितने ही कहते हैं कि यह टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है, इसलिए बराबर नहीं है - ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। कोई-कोई पण्डित ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, नहीं; मैं टीका बनाता हूँ, वह गणधरदेवों ने रची है, वह टीका मैं करता हूँ। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ के गधधर / प्रधान, धर्म के दीवान, ऐसे गणधरों ने टीका बनायी थी, भाव कहे, वह टीका मैं कहूँगा। समझ में आया?

श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये... बाद में भी श्रुत के धारक सन्तों-दिगम्बर मुनियों, भावलिंगी सन्तों ने इस शास्त्र की टीका व्यक्त की है। परम्परा से भले प्रकार व्यक्त की है। परम्परा से चली आती है। सर्वज्ञ भगवान से, गणधरों से रचित यह टीका परम्परा से चली आती है। गुरु ने शिष्य को कही; शिष्य ने शिष्य को कही— ऐसी ठेठ दिगम्बर परम्परा, सर्वज्ञ परम्परा से चली आती है। यह आधार देते हैं। समझ में आया? बीच में श्वेताम्बर निकले, उन्होंने तो अपनी कल्पना से नया निकाला है। वह परमात्मा की परम्परा का मार्ग नहीं है। समझ में आया? यह (दिगम्बर) तो परम्परा सर्वज्ञदेव, गणधरों ने... देखो! आधार देते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! गणधरों ने रची और श्रुतधर... भले गणधर की जैसी शक्ति थी, वैसी दूसरों को नहीं थी, परन्तु श्रुत के धारक थे। भावश्रुत के धारक थे, ऐसी **परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** परम्परा से भलीभाँति व्यक्त किये गये **परमागम के अर्थसमूह...** देखो! यह नियमसार को परमागम नाम दिया। परम+आगम। समझ में आया? परम्परा से आये हुए, ऐसे परमागम का अर्थ....

अपने मन्दिर बनता है न? उसका नाम भी परमागम है। परमागम मन्दिर है। यह नया बनता है न? **परमागम के अर्थसमूह... 'सार्थ' 'अर्थसार्थ'** यह न? समूह। आहा..! देखो! कितना निर्मान है! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त हैं, जंगल में रहते थे और नियमसार की टीका करते हुए कहते हैं कि मैं क्या हूँ? मैं तो क्या हूँ? गणधरों से, श्रुतधारों से इसकी टीका चली आती है। परम्परा-भगवान की परम्परा से चली आती है।

(कहते हैं) **कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहा..हा..! कहो, समझ में आया? ऐसी टीका-अलौकिक टीका है। दिगम्बर सन्तों की कथनी अलौकिक कथन है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की परम्परा की धारा चली आती है। समझ में आया? ऐसी टीका है तो सूक्ष्म। अब कहेंगे, छठवाँ श्लोक।

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः।
परमागम-सारस्य रुच्या मान्सलयाऽधुना ।।६।।

कहते हैं कि यह टीका हुई किस प्रकार? कि हमारे मन में बारम्बार ऐसी प्रेरणा होती थी कि मैं टीका बनाऊँ, मैं टीका बनाऊँ, ऐसी बारम्बार (प्रेरणा होती थी)। मगनभाई! यह विकल्प ही ऐसा आता था। आहा..हा..! सहज ऐसा विकल्प आता था कि मैं टीका बनाऊँ, टीका बनाऊँ। टीका की वाणी का कर्ता आत्मा है नहीं। टीका की वाणी का कर्ता आत्मा नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। आहा..हा..! परन्तु मुझे बारम्बार ऐसा विकल्प आता था, ओहो..! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के नियमसार की टीका बने, टीका बने - ऐसी मुझे बारम्बार प्रेरणा होती थी।

इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से.... देखो! आहा..! पुष्ट रुचि। परमागम, परमात्मा ने जैसा कहा, वैसा सन्तों ने परम्परा कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसा कहते हैं, वैसी उसकी टीका करने की मुझे रुचि हुई है। यह पुष्टि (का अर्थ)। वापस परमागम का सार। परमागम, ऐसा नहीं, परन्तु परमागम का सार। देखो, परमागम है, उसका भी सार। नियमसार है न? आहा..हा..! **पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है।** अन्दर प्रेरणा होती है कि शीघ्र बनाऊँ, टीका बने, टीका बने। ऐसा विकल्प है न? मगनभाई! इस विकल्प के बिना कहीं (टीका) नहीं बनती। बारम्बार ऐसा विकल्प आता है कि ऐसा करूँ, ऐसा करूँ। विकल्प है पुण्यबन्ध का कारण, परन्तु हमारे स्वरूप सन्मुखता का जो घोलन है, उससे मेरी शुद्धि बढ़ जाओ, ऐसी मेरी भावना है। आहा..हा..!

पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। इसके बिना विकल्प टूटता नहीं। ऐसे बनाऊँ, ऐसे बनाऊँ - ऐसा विकल्प बारम्बार आया करता है। **(उस रुचि से प्रेरित होने के कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की यह टीका रची जा रही है।)** लो! इस कारण से यह टीका बनायी है। देखो, भगवान की परम्परा से गणधरों ने रची हुई टीका का अर्थ मैं कहता हूँ। मेरी कल्पना का या मेरे घर का अर्थ नहीं है, ऐसा कहते हैं।

सातवाँ श्लोक।

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवार्थकाः।
प्रोक्ताः सूत्रकृता पूर्वं प्रत्याख्यानादिसत्क्रियाः।।७।।

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, **सूत्रकार ने पहले पाँच अस्तिकाय,...** कहे। काल के अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। काल को मिलाकर छह द्रव्य कहे। सात तत्त्व कहे और नौ पदार्थ (कहे)। **तथा प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है।** ऐसा कहते हैं, देखो! इसमें तो सत्प्रत्याख्यान-सच्चा प्रत्याख्यान क्या है? सच्ची भक्ति क्या है? ऐसे कथन कुन्दकुन्दाचार्य ने कहे हैं। सच्चा प्रतिक्रमण क्या है? सच्ची आलोचना क्या है? सत्क्रिया, ऐसा शब्द पड़ा है न? सत्क्रिया का कथन किया है। अपने आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीनता की क्रिया का नाम सत्क्रिया है। बाकी व्यवहार के जो विकल्प उठते हैं, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान के विकल्प, वह सत्क्रिया नहीं है। वह विकल्प तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं।

जिसमें सत्क्रिया-प्रत्याख्यान आदि शब्द है न? आलोचना, प्रत्याख्यान, भक्ति, प्रतिक्रमण, सामायिक, योग, नियम। यह सब, आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, ऐसे आत्मा की अन्तर एकाग्रता से आनन्द और शुद्धि की वृद्धि हो, उसका नाम सत्क्रिया कहा जाता है। देह की क्रिया जड़ है, वह तो मिट्टी है। यह बोला जाता है, वह जड़ मिट्टी है। आत्मा बोलता नहीं। वह जड़ की क्रिया है और अन्दर भक्ति का, कथन का विकल्प उठता है, वह तो राग है। वह सत्क्रिया नहीं। आहा..हा..! भगवान की भक्ति, दया, दान, व्रत, पूजा, सुनना, सुनाना - ऐसा जो विकल्प, राग उठता है, वह सत्क्रिया नहीं। समझ में आया? ऐई! यह जात्रा-वात्रा का विकल्प उठे, वह सत्क्रिया नहीं, ऐसा कहते हैं।

सत्क्रिया तो उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है, पुण्य-पाप के भाव—शुभ-अशुभराग से रहित है, ऐसी आत्मवस्तु में लीनता की एकाग्रता होना, उसका नाम परमात्मा और सन्त सत्क्रिया कहते हैं। समझ में आया ? लोग बाहर में इतने उलझ गये हैं। यहाँ तो कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है, ऐसा कहते हैं। मैं इसका स्पष्टीकरण करूँगा। पण्डितजी ! **सत्क्रिया का कथन किया है।** ऐसा कहते हैं, देखा ? कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में, प्रवचनसार में (कितना कहा है) !

मुमुक्षु : जैनधर्म में क्रिया.....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया, परन्तु कौन सी क्रिया ? क्रिया के तीन प्रकार। अभी कहा न ? यह शरीर, वाणी की क्रिया होती है, वह तो जड़ की है। हिलना, चलना, बोलना, वह तो जड़ की क्रिया है। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम / विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग की क्रिया है।

मुमुक्षु : धर्म नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

धर्म तो वीतराग परमात्मा की परम्परा से आया हुआ, चैतन्यस्वरूप भगवान आनन्द का धाम प्रभु आत्मा है, उसमें एकाग्रता होना, सत्स्वरूप शुद्ध में एकाग्रता होना, उसका नाम कुन्दकुन्दाचार्यदेव सत्क्रिया कहते हैं। कोई कहते है कि यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इसमें सत्क्रिया कही है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना (आदि)। आहा..हा.. !

आत्मा ज्ञान और आनन्द, शान्त अविकारी स्वभावस्वरूप के सन्मुख होकर उसमें लीनता करना, उस लीनता की क्रिया को यहाँ सत्क्रिया कहते हैं। अपूर्व कठिन बात है, भाई ! समझ में आया ? ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। पण्डितजी ! ऐसी बात है। गड़बड़-गड़बड़ करते हैं। ऐसा करो और वैसा करो। हो, शुभभाव होता है। भक्ति का, व्रत का विकल्प होता है, परन्तु वह है पुण्यबंध का कारण; वह धर्म स्वरूप नहीं है।

मुमुक्षु : थोड़ा-सा भी धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा-सा भी धर्म नहीं।

मुमुक्षु : अशुभ से तो बचता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी वह वस्तु धर्म नहीं है परन्तु उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है, कब? कि अपने निश्चय आनन्दस्वरूप की लीनता की सत्क्रिया उत्पन्न हो तो वह विकल्प आया, उसे व्यवहारधर्म कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! देखो न! कहते हैं, परम्परा, हमारे सन्तों ने परम्परा से ऐसी बात की है। यह टीका मैं कहूँगा, वह मेरी नहीं, यह तो परम्परा से चली आयी है और कुन्दकुन्दाचार्य ने इसमें सत्क्रिया कही है। कहो, पोपटभाई! समझ में आया इसमें? अन्दर ऐसी सूक्ष्म क्रिया है। तुम मानो कि बाहर से पैसा खर्च कर दिया और दान किया, इसलिए धर्म होता है, (ऐसा नहीं है)। धूल में भी धर्म नहीं है। उसमें भी वापिस पुष्टि तो दूसरी की है। गृहीत मिथ्यात्व का पोषण किया है। समझ में आया? यह न समझ में आवे, जरा सूक्ष्म पड़े इसे। वीतराग का दिगम्बर सम्प्रदाय का मार्ग अनादि से चला आता है। इससे विरुद्ध जो मार्ग है, उसकी पुष्टि करना, वह गृहीत / नये मिथ्यात्व का पोषण करनेवाली क्रिया है।

मुमुक्षु : नयी लकड़ी डाली (विपरीतता पुष्ट की)?

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी विशेष लकड़ी (विपरीत मान्यता) (डाली)। ऐई! सूक्ष्म बात है भाई! स्वरूपचन्दभाई! यह ऐसी बात है। स्वरूपचन्दभाई का जन्म तो श्वेताम्बर में हो गया। खबर है? अब (दिगम्बर) हो गये। बापू! मार्ग यह है, हों! यह पक्ष का मार्ग नहीं। यह तो वस्तु के स्वरूप का मार्ग है। वस्तु का ही ऐसा मार्ग है। समझ में आया? बहुत कठिन मार्ग पड़े। आहा..हा..!

कहते हैं **प्रत्याख्यानादि...** है न शब्द अन्दर में? देखो! शुद्धभाव, प्रत्याख्यान आदि है न? स्तुति में है न अन्दर? देखो! भक्ति, निश्चय परम-आवश्यक, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाधि, निश्चय प्रत्याख्यान, परमार्थ प्रतिक्रमण यह सब अन्दर एक-एक अधिकार है। भक्ति भी इसे कहते हैं कि आत्मा आनन्दस्वरूप में एकाग्र होना वह भक्ति है। सच्ची भक्ति तो यह है कि जो सत्क्रिया और मुक्ति का कारण है। बीच में भगवान की भक्ति का विकल्प आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

इस प्रकार निश्चयस्वरूप आत्मा अपने निजानन्द में लीन होकर जो शान्ति और अनाकुलता प्रगट करता है, उसका नाम सत्क्रिया कहने में आता है। उस भूमिका में फिर

शुभभाव होता है तो उस शुभभाव को व्यवहारधर्म का आरोप कहने में आता है। व्यवहार शब्द से (आशय है) पुण्य। है पुण्य, परन्तु इस निश्चयधर्म की भूमिका के साथ में आया है तो उसे व्यवहारधर्म का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? भारी कठिन। जगत के साथ अनमेल होकर खड़े रहे, तब (होवे ऐसा है)। (जगत के साथ) मेल खाये, ऐसा नहीं है।

कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सत्क्रिया का कथन किया है। लो! **(प्रथम पाँच अस्तिकाय आदि और पश्चात् प्रत्याख्यानादि सत्क्रिया का कथन किया है।)** सात (श्लोकों द्वारा) मंगलाचरण कहा।

अब कुन्दकुन्दाचार्य... टीकाकार (कहते हैं) **अति विस्तार से बस होओ.... बस होओ। 'अलम' 'अलम' अलमलमतिविस्तरेण। स्वस्ति साक्षादस्मै विवरणाय। साक्षात् यह विवरण जयवन्त वर्तो।** आहा..हा..! कहते हैं कि यह टीका है, वह कायम रहो। ऐसा कहा न? यह विवरण कहा न? जयवन्त वर्तो। यह परम टीका सत्य परमात्मस्वरूप को बतानेवाली, अपने धर्म की शान्ति की क्रिया बतानेवाली ऐसी टीका जयवन्त वर्तो। पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि स्वयं कहते हैं।

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है — ऊपर है न **अथ सूत्रावतारः —** इसमें यह शब्द पड़ा है, लो! सूत्र का अवतार होता है। सूत्र जन्मता है अर्थात् सूत्र की उत्पत्ति होती है, सूत्र की उत्पत्ति होती है। कुन्दकुन्दाचार्य सूत्र की उत्पत्ति कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में महामुनि दिगम्बर सन्त हुए हैं। पौन्नूर हिल में रहते थे। मद्रास से अस्सी मील दूर वन्देवास नाम का एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ से पाँच मील दूर पौन्नूर हिल नामक टेकरी है। वहाँ चरण हैं, कुन्दकुन्दाचार्य के चरण हैं। हम दो बार जाकर आये हैं। वहाँ आनन्द में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। तीर्थंकररूप से अरिहन्त पद में विराजमान हैं। वहाँ गये थे, आठ दिन रहकर यहाँ आकर यह बनाया है। वहाँ आठ दिन रहे थे। बाद में आकर यह शास्त्र बनाया। सूत्र का जन्म होता है, ऐसा कहते हैं। सूत्र का अवतार-अवतरण होता है। अब कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा।

गाथा-१

अथ सूत्रावतार: ह्न

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं ।।१।।

नत्वा जिनं वीरं अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावम्।
वक्ष्यामि नियमसारं केवलिश्रुतकेवलिभणितम् ।।१।।

अथात्र जिनं नत्वेत्यनेन शास्त्रस्यादावसाधारणं मङ्गलमभिहितम्।

नत्वेत्यादि ह्न अनेकजन्माटवीप्रापणहेतून् समस्तमोहरागद्वेषादीन् जयतीति जिन:। वीरो विक्रान्त:, वीरयते शूरयते विक्रामति कर्मारातीन् विजयत इति वीर: ह्न श्रीवर्धमानसन्मतिनाथ-महतिमहावीराभिधानै: सनाथ: परमेश्वरो महादेवाधिदेव: पश्चिमतीर्थनाथ: त्रिभुवनसचराचर-द्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानदर्शनाभ्यां युक्तो यस्तं प्रणम्य वक्ष्यामि कथयामीत्यर्थ:। कं ? नियमसारम्।

नियमशब्दस्तावत् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेषु वर्तते, नियमसार इत्यनेन शुद्धरत्नत्रय-स्वरूपमुक्तम्।

किम्विशिष्टम् ? केवलिश्रुतकेवलिभणितम्। केवलिन: सकलप्रत्यक्षज्ञानधरा:, श्रुत-केवलिन: सकलद्रव्यश्रुतधरास्तै: केवलिभि: श्रुतकेवलिभिश्च भणितं सकलभव्यनिकुरम्ब-हितकरं नियमसाराभिधानं परमागमं वक्ष्यामीति विशिष्टेष्टदेवतास्तवनानन्तरं सूत्रकृता पूर्वसूरिणा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरुणा प्रतिज्ञातम्। इति सर्वपदानां तात्पर्य्यमुक्तम्।

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है —

नमकर अनन्तोत्कृष्ट दर्शन-ज्ञानमय जिन वीर को।
कहुँ नियमसार सु केवली, श्रुतकेवली परिकथित को॥१॥

अन्वयार्थ :—[अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावं] अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन

जिनका स्वभाव है - ऐसे (केवलज्ञानी और केवलदर्शनी) [जिन वीरं] जिन वीर को [नत्वा] नमन करके [केवलिश्रुतकेवलिभणितं] केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ [नियमसारं] नियमसार [वक्ष्यामि] मैं कहूँगा।

टीका :—यहाँ 'जिनं नत्वा' इस गाथा से शास्त्र के आदि में असाधारण मंगल कहा है।

'नत्वा' इत्यादि पदों का तात्पर्य कहा जाता है —

अनेक जन्मरूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को जो जीत लेता है, वह 'जिन' है। 'वीर', अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी); वीरता प्रगट करे, शौर्य प्रगट करे, विक्रम (पराक्रम) दर्शाए, कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, वह 'वीर' है। ऐसे वीर को जो कि वर्द्धमान, श्री सन्मतिनाथ, श्री अतिवीर तथा श्री महावीर — इन नामों से युक्त हैं; जो परमेश्वर हैं; महादेवाधिदेव हैं; अन्तिम तीर्थनाथ हैं; जो तीन भुवन के, सचराचर, द्रव्य-गुण-पर्याय से कहे जानेवाले समय को (समस्त द्रव्यों को) जानने-देखने में समर्थ, ऐसे सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-दर्शन से संयुक्त हैं, उन्हें नमन करके कहता हूँ। क्या कहता हूँ ? 'नियमसार' कहता हूँ। 'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है। 'नियमसार' ('नियम का सार') ऐसा कहकर शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। कैसा है वह ? केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ है। 'केवली', वे सकल प्रत्यक्षज्ञान के धारण करनेवाले और 'श्रुतकेवली', वे सकल द्रव्यश्रुत के धारण करनेवाले; ऐसे केवलियों तथा श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ, सकल भव्यसमूह को हितकर, 'नियमसार' नाम का परमागम मैं कहता हूँ। इस प्रकार विशिष्ट इष्टदेवता का स्तवन करके, फिर सूत्रकार पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवगुरु ने प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार सर्व पदों का तात्पर्य कहा गया।

गाथा-१ पर प्रवचन

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।१।।

समयसार में

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं॥१॥

—ऐसा था। इसमें तो स्पष्ट केवली और श्रुतकेवली दो नाम लिये हैं। टीका में ऐसा किया है। टीका में स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार स्पष्ट किया है। यह नियमसार केवलज्ञानी ने कहा है। देखो कुन्दकुन्दाचार्य सीधा कहते हैं। भगवान के बाद ६०० वर्ष में दिगम्बर मुनि हुए। उनसे सौ वर्ष पहले श्वेताम्बर पन्थ दिगम्बर में से निकल गया था। पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य हुए। कहते हैं कि यह समयसार केवली का कहा हुआ कहूँगा, ऐसा कहते हैं, लो! केवली का कहा हुआ कहूँगा - तो क्या केवली के पास से सुना है? हाँ, साक्षात् भगवान के पास गये थे। महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। केवली और श्रुतकेवली। चौदह पूर्वधर जो श्रुतकेवली महाविदेह में थे, उनके पास जो सुना है, वह मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। नीचे हिन्दी है न?

नमकर अनन्तोत्कृष्ट दर्शन-ज्ञानमय जिन वीर को।
कहुँ नियमसार सु केवली, श्रुतकेवली परिकथित को॥१॥

पहले इसका अन्वयार्थ लेते हैं। '**अनन्तवरज्ञानदर्शनस्वभावम्' अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है....** भगवान का। केवलज्ञानी वीर परमात्मा की व्याख्या करते हैं। वीर भगवान महावीर परमात्मा कैसे हैं? **अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है....** ऐसी जिनकी दशा प्रगट हो गयी है। तीन काल-तीन लोक एक समय में भगवान जानते हैं और देखते हैं, ऐसा भगवान महावीर का शासन है तो महावीर को नमन पहले करते हैं। अभी भगवान का शासन चलता है न?

कहते हैं, अनन्त और उत्कृष्ट **अनन्त और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शन जिनका स्वभाव है - ऐसे (केवलज्ञानी और केवलदर्शनी)... 'जिनं वीरं' जिन वीर को....** जिन्होंने चार गति और राग-द्वेष-मोह को जीता है, ऐसे जिन वीर को। **नमन करके...** लो, उन्हें नमन करता हूँ, उन्हें मैं नमन करता हूँ। वीर-जिन्होंने आत्मा में से अज्ञान और राग-द्वेष निकाल दिये हैं और परमात्मपद की प्राप्ति की है, उन्हें मैं नमन करता हूँ।

'**केवलिश्रुतकेवलिभणितम्' केवली तथा श्रुतकेवलियों का कहा हुआ...** है।

यह नियमसार कोई अज्ञानी का या कोई कल्पना से बनाया है, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञपरमात्मा अरिहन्तदेव केवलज्ञानी और उनके पास रहनेवाले श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ यह नियमसार है। समझ में आया? **नियमसार मैं कहूँगा।** नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यह अर्थ में आयेगा। सार अर्थात् पुण्य और पाप के विकार से, व्यवहाररत्नत्रय से रहित। नियम अर्थात् अपना शुद्ध चैतन्य भगवान की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशारूपी नियम; और सार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि के विकल्प से रहित, उसका नाम नियमसार कहा जाता है। व्यवहारश्रद्धा से रहित, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! तब वे कहते हैं कि व्यवहार से प्राप्त होता है, व्यवहार से प्राप्त होता है। व्यवहार हो, आता अवश्य है परन्तु उससे मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? टीका करेंगे।

टीका :— **यहाँ...** मैं कहूँगा, ऐसा है न? '**वक्ष्यामि**' मैं कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कहनेवाला तो मैं हूँ न! मैंने भले केवली और श्रुतकेवली से सुना, परन्तु वर्तमान में तो मैं कहता हूँ। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा और श्रुतकेवलियों, चौदह पूर्वधरों का कहा हुआ है, परन्तु वर्तमान में तो मैं कहता हूँ। **यहाँ 'जिनं नत्वा' इस गाथा से शास्त्र के आदि में असाधारण मंगल कहा है।** महामांगलिक। ओहो! असाधारण मांगलिक, ऐसी वस्तु अन्यत्र है नहीं। ऐसा मंगल-पवित्रता की प्राप्ति, ऐसा मांगलिक यहाँ पहले कहा है। मंग अर्थात् पवित्रता, ल अर्थात् लाती-प्राप्ति। अपने आनन्द की, शुद्धि की प्राप्ति का नाम मंगल कहने में आता है। आहा..हा..!

'नत्वा' इत्यादि पदों का तात्पर्य कहा जाता है— देखो! तात्पर्यवृत्ति है न? इसलिए तात्पर्य (कहा)। **अनेक जन्मरूप अटवी को प्राप्त कराने के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को जो जीत लेता है,...** विकारी भाव को कहा। ऐ! पण्डितजी! कर्म शब्द नहीं लिया। देखो! टीका देखो! अनेक जन्म चौरासी के अवतार—निगोद, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय आदि अवतार होने का कारण, चौरासी के अवतार / जन्म-मरण होने का हेतु समस्त मोह, राग-द्वेष आदि भाव हैं। यहाँ कर्म को हेतु नहीं कहा। समझ में आया? वीर के अर्थ में अर्थ करेंगे। कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। वीर के अर्थ में वहाँ आगे कर्मशत्रु डालेंगे।

यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन आनन्दस्वरूप से विपरीत मान्यता-मिथ्यात्व—

शरीर मैं हूँ, राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, पुण्य से मुझे धर्म होता है—ऐसी विपरीत मान्यता और राग-द्वेष, अनुकूल-प्रतिकूलता में राग और द्वेष, ऐसे जो मोह और राग-द्वेष को जिसने जीत लिया है। **जीत लेता है, वह 'जिन' है।** उसे जिन कहते हैं। जिन किसी पक्ष का शब्द नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। जिन तो गुणवाचक शब्द है। आहा..हा..! जिसने आत्मा में से मिथ्यात्व और राग-द्वेष को जीत लिया है और सम्यग्दर्शन तथा वीतरागता प्रगट की है, उसे जिन कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

अनेक जन्मरूप अटवी... ऐसा शब्द लिया है न? टीका '**अनेकजन्माटवी**' संस्कृत में ऐसा शब्द है। अनन्त शब्द नहीं लिया। अनेक जन्मरूपी अटवी-वन-जंगल। आहा..हा..! चौरासी के अवतार, जिसमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, निगोद, आलू, काई के अनन्त अवतार किये। ऐसे जन्म-मरण का हेतु मोह, राग-द्वेष है। मोह अर्थात् मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष अर्थात् अस्थिरता का भाव, उन्हें जीत लिया। जिसने अपने स्वभाव का आश्रय करके उन्हें जीत लिया। भाषा देखो! मोह, राग-द्वेष को जीता। जिन की व्याख्या करनी है न? उसका यह अर्थ है कि स्वभाव परमात्मा अपना निजस्वरूप, शुद्ध बुद्ध ज्ञानघन में लीन होकर मोह और राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं हुई, उसका नाम मोह और राग-द्वेष जीता, ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? ऐसे जिन हैं। लो, मांगलिक में पहले जिन शब्द आया है। आहा..!

मोह और राग-द्वेष को जीत लिया। उसका अर्थ यह हुआ कि राग-द्वेष से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा तो नहीं। समझ में आया? शुभराग है, उसे भी जीत लिया, ऐसा कहा है न? शुभराग है, उससे मुझे लाभ होता है, ऐसा तो रहा नहीं। उसे तो जीत लिया। शुभराग से रहित मेरी चीज़ शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके अनुभव में भान करके अन्तर में लीन होकर मोह और राग-द्वेष को जीत लिया। शुभराग को जीत लिया। समझ में आया? शुभराग से मुझे लाभ होगा, ऐसा तो रहा नहीं। उसे तो जीत लिया। जिसे जीता, उससे आत्मा में जीतने की मदद होगी? क्या कहते हैं, समझ में आया? शुभ रागादि को जीतना है, नाश करना है। जिसका नाश करते हैं, उससे आत्मा की शान्ति की उत्पत्ति होती है? उसके कारण से (होती है)?

समस्त मोह-राग-द्वेषादिक को... द्वेष आदि अर्थात् विषय-वासना, रति-अरति। **जो जीत लेता है,...** ऐसा है। **वह 'जिन' है।** आहा..!

अब वीर की व्याख्या। '**वीर**',... जिन वीर। '**वीर**', **अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी);...** परमात्मा तीर्थंकरदेव, वीर परमात्मा। **वीरता प्रगट करे,...** प्रगट करे। वीर, विक्रान्त, पराक्रमी एक अर्थ। वीरता प्रगट करे। आत्मा की, अपने स्वभाव की-अनन्त बल शक्ति जो प्रगट करे। पामरता का नाश करके अपनी वीरता प्रगट करे, ऐसा कहते हैं। **शौर्य प्रगट करे,...** प्रगट करे। ये सब शब्दार्थ हैं। शौर्य, शौर्य। **विक्रम (पराक्रम) दर्शाये,...** अपना अन्दर का पराक्रम दर्शावे। वीर तो उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप की, आनन्द की रचना करने में वीर्य प्रगट करे। राग की रचना करने में वीर्य प्रगट नहीं करे। (राग की रचना करे), वह वीर नहीं है। समझ में आया?

शौर्य प्रगट करे,... प्रगट करे। शौर्य अर्थात् वीरता, हों! शरीर की शौर्यता की यहाँ बात नहीं है। **विक्रम (पराक्रम) दर्शाये,...** अपने शुद्धस्वरूप की ओर का आश्रय करके अपना पराक्रम प्रगट करे कि मेरा पराक्रम अनन्त वीर्य है, उसमें पामरता नहीं रह सकती, इसका नाम वीर परमात्मा कहने में आता है। आहा..! ऐसी पहचान करके मैं नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा भगवान णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं किया, ऐसा नहीं। ऐसे वीर, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से वीरता प्रगट की। शत्रु के साथ में लड़ने में वीरता दिखाते हैं न? वीरता। लोग ऐसे झट मारते हैं। वैसे परमात्मा आदि आत्मा अपनी अन्तर की वीरता प्रगट दिखाते हैं, उन्हें वीर कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? महावीर भगवान को नमन करते हैं। उनका शासन चलता है न! परमात्मा महावीर तो मोक्ष पधारे, परन्तु शासन उनका है न?

वह 'वीर' है। उसे वीर कहने में आता है। जिसने पुण्य-पाप के राग को जीतने में निज वीर्य प्रगट किया, पराक्रम प्रगट किया, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहा..हा..! शुभ-अशुभराग को जीतने में जिसने, आत्मा ने वीरता प्रगट की, पराक्रम किया, शौर्य प्रगट किया। आहा..हा..! स्वभाव की शौर्यता पामरता का नाश करने में प्रगट की, उसे हम वीर कहते हैं। समझ में आया? उस वीर के मार्गानुसारी भी ऐसे होने चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो, कैसी बात की है! टीका कितनी सरस बनायी है!

विजय प्राप्त करे,... ऐसा लिया न? देखो! **कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे,...** जड़कर्म निमित्त हैं, परन्तु भावकर्म पर विजय प्राप्त की, अपनी ध्वजा (फहरायी) कि मैं

शुद्ध आनन्दघन हूँ। मैंने मेरी वीरता से स्वराज्य प्राप्त किया है। मेरा आनन्द आदि स्वराज्य, हों! यह अभी लोग कहते हैं, उस धूल का राज नहीं। अभी दोनों व्यक्ति देखो न, स्वराज्य के लिये परस्पर हैरान-हैरान हो जाते हैं। यह तो स्वराज्य—अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति-वीतरागता, ऐसा मेरा स्वराज्य मेरी वीरता से मुझे प्रगट हुआ है। कहो, समझ में आया? कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की है।

आनन्दघनजी में आता है न? 'वीर पणुं ते मांगूँ...' पहला शब्द क्या आता है? 'वीर जिनेश्वर चरणें लागुं वीर पणुं ते मांगूँ रे, वीर पणुं ते आतम ठाणे, जाणुं तुमथी वाणे रे....' भगवान! आपकी वाणी में मैंने सुना कि यह वीरपना तो अन्दर आत्मा में है। अपने असंख्य प्रदेश में अनन्त वीर्य पड़ा है। 'वीर पणुं ते आतम ठाणे, जाणुं तुमथी वाणे रे... ध्यान विज्ञान बिना ने...' ऐसा कुछ शब्द है। 'निजपद पहिचाने रे....' निजपद पहिचाने। अपने आनन्द के ध्यान को शुद्धता से अपने निजपद की पहिचान करे। ऐसे वीर को वीर कहा जाता है। 'ध्यान बिना ने शक्ति प्रमाणे' ऐसा है। शक्ति प्रमाणे। 'निज ध्रुवपद पहिचाने' ऐसा है। आनन्दघनजी में आता है।

वीर के मार्गानुसारी वीर होते हैं, ऐसा कहते हैं। पामर-कायर नहीं होते। समझ में आया? अपने स्वभाव के साधन से जिन्होंने विकार और कर्म को जीत लिया है, उसका नाथ वीर और पण्डित कहा जाता है। आहा..! शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। देखो! वे इनकार करते हैं, भाई! अरिहन्त नहीं कहलाते। इसमें तो यह आया। कर्मशत्रुओं पर विजय। कितनी जगह भूल निकालेंगे। कर्म को शत्रु कहने में तो हिंसा है। (ऐसा वे कहते हैं।) अरे! वह तो नाममात्र कहने में क्या? शब्द में हिंसा कहाँ आयी? अभी आया है न? णमो अरिहंताणं नहीं कहना। णमो अरहंताणं कहना। ऐसी चर्चा समाचारपत्रों में चली है। क्योंकि णमो अरिहंताणं में अरि—दुश्मन आता है। नाम मात्र दुश्मन है। अन्दर हिंसा की उत्पत्ति होती है, इसलिए नहीं। पण्डितजी! किसी का आया है न? फिरोजाबाद। माणिकचन्द नाम का कोई पण्डित है।

यहाँ तो यह कहा। कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसका अर्थ स्वभाव की शान्ति में मग्न हुए और विकार की उत्पत्ति नहीं हुई तो शत्रुओं का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। कर्म को शत्रु कहा तो क्या उसमें द्वेष है? समझ में आया? उन्हें नमन करके

कहता हूँ। अहो! ऐसे परमात्मा को मैं नमन करके, वन्दन करके, यह तात्पर्यवृत्ति टीका कहूँगा। यह तो शुरुआत है न? कल से तो शुरु किया।

क्या कहता हूँ नियमसार कहता हूँ। देखो! मैं नियमसार कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है, वैसे मैं टीका करूँगा। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं नियमसार कहूँगा। नियमसार का **'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है।** यह नियम है। आहा..हा..! यह व्रत और तप के नियम के विकल्प हैं, वे नियम नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शब्द के अर्थ बदल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? यहाँ तो आत्मा में शुद्ध स्वरूप पवित्र का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी लीनता को यहाँ नियम कहा जाता है। वह नियम मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! समझ में आया? **'नियम' शब्द प्रथम तो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के लिए है।** व्यवहार विकल्प के लिये नियम नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह नियम लिया, यह व्रत लिया, वह तो सब व्यवहार विकल्प है; वह वास्तविक नियम नहीं। आहा..हा..! अब नियम का अर्थ टीका में आयेगा। नियमसार - नियम का सार। **ऐसा कहकर शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।** देखो! व्यवहार नहीं। आहा..हा..! पण्डितजी! ऐसी बात है।

कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं नियमसार कहूँगा - तो नियम का अर्थ क्या? अपना शुद्ध पवित्र भगवान, पूर्ण भगवान पूर्ण ब्रह्म आनन्द के अन्तर्मुख होकर प्रतीति, अन्तर्मुख होकर स्वसंवेदन ज्ञान और अन्तर्मुख में लीनता (होना), उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को नियम कहा जाता है। समझ में आया? और सार कहने पर शुद्ध रत्नत्रय का स्वरूप कहा। सम्यग्दर्शन शुद्धस्वभाव का अनुभव और उसमें प्रतीति तथा उसमें लीनता, वह शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप कहा। शुद्धरत्नत्रय को यहाँ मोक्षमार्ग कहा। व्यवहाररत्नत्रय को मोक्षमार्ग नहीं कहा गया। बहुत से पण्डित शोर मचाते हैं न? व्यवहाररत्नत्रय भी मोक्षमार्ग है, व्यवहाररत्नत्रय पहले और फिर निश्चयरत्नत्रय... पण्डितजी! गप्प मारते हैं। आहा..हा..! देखो! क्या कहते हैं?

ऐसा कहकर.... नियमसार शब्द में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा, नियम अर्थात् अपना चैतन्य भगवान पुण्य-पाप से रहित, व्यवहाररत्नत्रय के राग से रहित, अपने

शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता होना, ऐसे तीन को नियम कहा जाता है; और सार कहने पर वह शुद्ध रत्नत्रय है। बीच में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह वास्तविक नियमसार नहीं है। है इसमें? पण्डितजी! संस्कृत में भी है। **शुद्धरत्नत्रय-स्वरूपमुक्तम्।** संस्कृत में है। आहा..! अशुद्धरत्नत्रय दूसरी कोई चीज़ है या नहीं? है, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं। शुद्ध शब्द प्रयोग किया तो दूसरी चीज़ अशुद्ध है न? व्यवहाररत्नत्रय अशुद्धरत्नत्रय है, विकल्प है, राग है। आहा..हा..! गजब!

नियमसार - नियम कहने से शुद्ध रत्नत्रय; सार कहने से शुद्ध रत्नत्रय, ऐसा। नियम कहने से रत्नत्रय और सार कहने से शुद्ध रत्नत्रय, ऐसा। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य पहले से कहते हैं कि यह नियमसार है। अन्तर में मोक्ष का निर्विकारी सम्यग्दर्शन, निर्विकारी ज्ञान और विकाररहित आनन्द की लीनता, इसका नाम शुद्ध रत्नत्रय, यही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)